# वैश्विक दक्षिण को उत्पादक रोज़गार की ज़रूरत है : पाँचवाँ न्यूज़लेटर (2026)

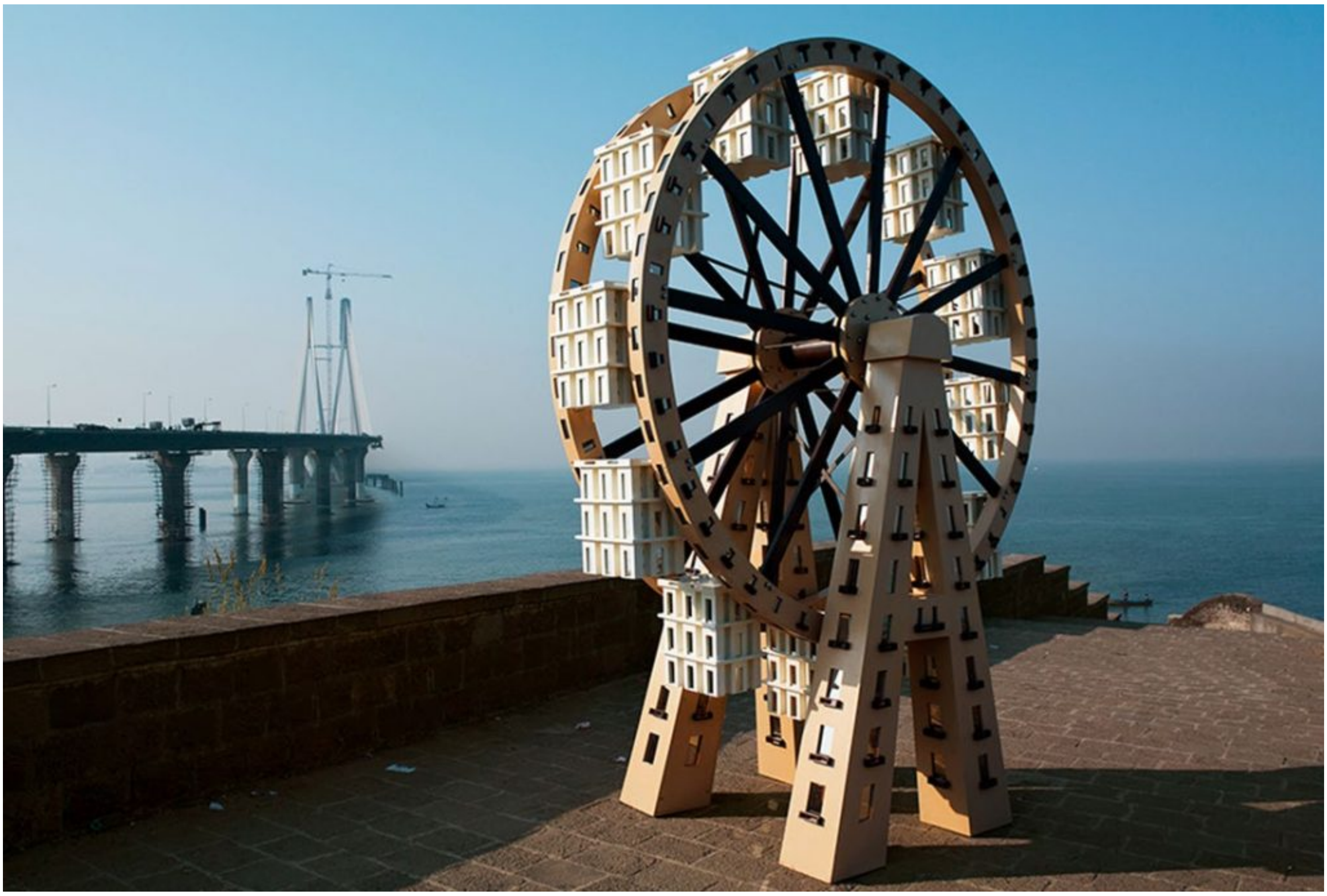

पहिया, गिगी स्कारिया, 2009

प्यारे दोस्तो,

**ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान** की ओर से अभिवादन।

अगस्त 2025 में भारत के 79वें स्वतंत्रता दिवस पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने **भाषण** के केंद्र में विकसित भारत 2047 का लक्ष्य रखते हुए एक राष्ट्रीय विनिर्माण मिशन की घोषणा की। उन्होंने कहा कि इस मिशन को अंतरिक्ष से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेन्स) तक कई क्षेत्रों में 'आयात पर निर्भरता कम करना और आर्थिक लचीलापन मज़बूत' करना होगी। उन्होंने भारत के अट्ठाईस राज्यों, आठ केंद्रीय शासित प्रदेशों और केंद्र सरकार का आह्वान किया कि वे घरेलू विनिर्माण के लिए 100 'प्राथमिकता वाले प्रोजेक्टों' की पहचान करें और राज्य सरकाओं की नियामक प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करें, 'ख़ासतौर से ज़मीन, सुविधाओं और सामाजिक संरचना से जुड़े हुए', ताकि 'वैश्विक

कंपनियों को आकर्षित किया जा सके’। विकसित भारत 2047 के ज़रिए मोदी की 2014 की मेक इन इंडिया योजना दोबारा परोसी जा रही है। ये दोनों योजनाएँ तीन विचारों पर टिकी हैं:

1. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से घरेलू विनिर्माण बढ़ेगा।
2. भारतीय कंपनियाँ वस्तुओं का उत्पादन कर सकती हैं लेकिन केवल बड़ी विदेशी कंपनियों के मार्गदर्शन में ही।
3. इन देसी कंपनियों को भारत के अंदर पूरी आपूर्ति शृंखला तैयार करने की ज़रूरत नहीं – और न ही मूल्य संवर्धन की अधिकांश प्रक्रियाओं के लिए भी – क्योंकि उत्पादों की असेंबलिंग भर से ही ‘मेक इन इंडिया’ का लक्ष्य पूरा हो जाएगा।

1991 में जब भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए खोला गया था, जिसे उदारवाद का नाम दिया गया, तब औद्योगिक क्षमता और प्रौद्योगिकी क्षमता के विकास के लिए किस तरह के निवेश की ज़रूरत होगी यह पता नहीं था – यहाँ तक कि विदेशी निवेश के नियम क्या होने चाहिए इसकी भी कोई ख़ास समझ नहीं थी – और न ही औद्योगीकरण के लिए कोई लंबी योजना थी। ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान के हमारे नए डोसियर, *[illegible]* (जनवरी 2026), में विश्लेषण किया गया है कि कैसे उदारीकरण ने रणनीति के तहत खड़े किए गए इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र आदि जैसे सार्वजनिक उद्यमों को बर्बाद किया और भारत को सेवाओं के निर्यात करने वाले देश की भूमिका में क़ैद कर दिया, तथा साथ ही बेरोज़गारी की विशाल समस्या का कोई निदान नहीं दिया।

सेटलमेंट, गिगी स्कारिया, 2010

विकसित पूँजीवादी अर्थव्यस्थाओं ने एक स्थिर औद्योगीकरण सिर्फ़ इसलिए हासिल नहीं किया कि उन्होंने इसकी प्रक्रिया बहुत पहले शुरू कर दी थी और न ही इसलिए कि शुरुआती विनिर्माण में काफ़ी श्रम लगता था। उनके औद्योगिक

विकास के पीछे ख़ास राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ थीं जो पहले उपनिवेश रहे देशों में आज मौजूद नहीं हैं: घरेलू बाज़ारों को लंबे समय तक सुरक्षा दी गई, उपनिवेशों के श्रम और कच्चे माल जैसे संसाधनों तक पहुँच, और सबसे ज़रूरी – विदेशी बाज़ार जो उत्पादों के लिए माँग बनाए रख सकते थे जब गहन घरेलू असमानताएँ जनता के क्रय शक्ति को सीमित कर दे।

यूरोप और उत्तरी अमेरिका में उद्योगों को केंद्रित करने में उपनिवेशों ने बड़ी भूमिका निभाई। उन्होंने अधिशेष श्रम मुहैया करवाया, सस्ते दामों पर खाद्य सामग्री और कच्चा माल की आपूर्ति की और तैयार माल के लिए एक बँधुआ या उनके विशेषाधिकार वाले बाज़ार का काम किया। माँग का एक विदेशी आधार तैयार करने का मतलब था कि घरेलू असमानताओं की सीमाओं के बावजूद उत्पादन का विस्तार जारी रखा जा सकता था, जिससे विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार जारी रहा और प्रौद्योगिकी विकास हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के मामले में भी शुरुआती औद्योगीकरण को विदेशी बाज़ारों का सहारा मिला, पहले ब्रिटिश व्यापार घाटों की वजह से और बाद में विश्व अर्थव्यवस्था में इसकी वर्चस्ववादी स्थिति की वजह से। युद्धोत्तर काल में, इस प्रणाली को कीन्सियन मांग प्रबंधन और श्रम की मजबूत हुई सौदेबाजी की ताक़त ने सुदृढ़ किया, जिसे आंशिक रूप से समाजवादी खेमे के अस्तित्व ने आकार दिया था।

ह्यूमन पुल, गिगी स्कारिया, 2018

इसके विपरीत, भारत जैसी वैश्विक दक्षिण की अर्थव्यवस्थाएँ एक दुनिया की एक व्यवस्था में काम करने को मजबूर हैं जो उनके नीति-निर्माण के दायरे सीमित करती है, राज्य के हस्तक्षेप पर कड़ी सख़्ती रखती है और व्यापार में उदारीकरण और पूँजी के आवागमन को ख़ास तरजीह देती है। इस पृष्ठभूमि में, औद्योगीकरण के सामने सबसे बड़ी रुकावट प्रौद्यौगिकी न होना नहीं है बल्कि घरेलू और विदेशी माँग दोनों की कमी है। भारत में अत्यधिक आय असमानता की वजह से घरेलू बाज़ार में उत्पादों के लिए माँग कम है, जबकि विदेशी बाज़ारों में प्रतियोगिता बहुत ज़्यादा है और उनमें ऐसे देशों तथा कंपनियों का बोलबाला है जो प्रौद्यौगिकी की दृष्टि से बहुत विकसित हैं और जिन्हें उनके राष्ट्रों का जोरदार समर्थन प्राप्त है।

इसलिए भारत में विनिर्माण क्षेत्र में आए गतिरोध के कारण को एक ऐतिहासिक मौक़ा खो देने या '**अकाल विऔद्योगीकरण**' (समय से पहले विऔद्योगीकरण) की पलटी न जा सकने वाली प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यहाँ संगठित औद्योगिक रोज़गार शुरू से ही कम था और इसके सीमित विकास से सब बर्बाद तो नहीं हुआ लेकिन एक गतिरोध पैदा हो गया। गहरी समस्या दीर्घकालिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षमताओं – जैसे पूंजीगत सामान, भारी मशीनरी और इलेक्ट्रॉनिक्स – के चुनिंदा क्षरण में निहित है, भले ही ऑटोमोबाइल जैसे कुछ उपभोक्ता-उन्मुख उद्योगों में वृद्धि हुई है।

पोस्ट लैंड, गिगी स्कारिया, 2008

इसलिए डोसियर का तर्क है कि भारत के औद्योगिक संकट को ऐसे राजनीतिक और नीतिगत निर्णयों का परिणाम समझा जाना चाहिए जिन्होंने माँग को सीमित किया, रणनीतिक औद्योगिक क्षेत्रों को कमज़ोर किया और भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक पूँजीवाद से अधीनस्थ शर्तों पर जोड़ा। विनिर्माण उत्पादन में गतिरोध इसलिए पैदा नहीं हुआ कि औद्योगीकरण अब संभव नहीं, बल्कि ऐसा इसलिए हुआ कि इसके विस्तार के लिए जो परिस्थितियाँ ज़रूरी हैं उन्हें व्यवस्थित रूप से नज़रंदाज़ किया गया – ये परिस्थितियाँ हैं आय पुनर्वितरण, राज्य-निर्दिष्ट औद्योगिक नीति और स्थिर बाज़ारों तक पहुँच।

हमारा डोसियर पाँच अहम बिंदु पेश करता है :

1. साल 2000 से भारत में विनिर्माण क्षेत्र में निरंतर कमी देखी गई है, इस क्षेत्र की जीडीपी में भागीदारी साठ साल पहले के स्तर पर गिर गई। इसके साथ औद्योगिक विकास कमज़ोर रहा और संगठित रोज़गार में गिरावट आई है। अर्थशास्त्री आर. नागराज का **मत** है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के दौरान भी विनिर्माण क्षेत्र की जीडीपी में भागीदारी 15%-17% पर ही रुकी रही। विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार में कमी आई जबकि यह कृषि क्षेत्र में बढ़ा – ये दोनों अकाल विऔद्योगीकरण के संकेत हैं। नागराज इस बात की ओर इशारा करते हैं कि निवेश का गिरना और आयात पर निर्भरता, ख़ासतौर से मध्यवर्ती और पूँजीगत परिसंपत्तियों (कैपिटल गुड्ज़) के लिए, इस स्थिति के सबसे प्रत्यक्ष कारण हैं।
2. मेक इन इंडिया, आत्मनिर्भर भारत और उत्पादन आधारित प्रोत्साहन योजना जैसे लागू किए गए नीतिगत क़दम प्रौद्योगिकी विकास, विस्तृत आधार वाले औद्योगिक क्षेत्र को तैयार करने में विफल रहे हैं। इसकी जगह इन्होंने वस्तुओं की असेंबलिंग आधारित उत्पादन को प्रोत्साहित किया है जो आयात पर निर्भर है (जैसा कि रामा अरुण कुमार और बिस्वजीत धर के 2020 के एक **शोधपत्र** में दिखाया गया है)।
3. भारत में कृषि सुधार न किए जाने और गहन वर्गीय असमानता के कारण घरेलू माँग सीमित हुई, जिससे औद्योगीकरण का स्तर भी सीमित हो गया।
4. व्यापार में उदारीकरण, निजीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र को कमज़ोर किए जाने से पूँजीगत परिसंपत्तियाँ और मध्यवर्ती उद्योग बर्बाद हो गए, इससे आयात बढ़ा और घरेलू प्रौद्योगिकी क्षमताओं में कमी आयी (इसे साबित करने के लिए हमने कम्प्यूटर क्षेत्र का उदाहरण पेश किया)।
5. अंत में, हमारा मत है कि विनिर्माण क्षेत्र की जगह सेवा आधारित विकास कभी नहीं ले सकता, क्योंकि इस तरह का विकास – ख़ासतौर से आईटी और वित्तीय क्षेत्रों में – न तो श्रमबल को रोज़गार दे पाता है और न ही औद्योगिक क्षमता को मज़बूत करता है। इस तरह के आर्थिक रुझान मज़दूरों को कम आय, असुरक्षित रोज़गार में क़ैद कर एक अनिश्चितताओं वाले देश का निर्माण करते हैं।

हेज़िटेंट अटेम्प्ट, गिगी स्कारिया, 2018

हम भारतीय औद्योगीकरण पर बहस जारी रखने के लिए निम्नलिखित बिंदु पेश करते हैं:

1. औद्योगिक नीति को एक राजनीतिक कार्यक्रम के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि तकनीकी विशेषज्ञता के अभ्यास के रूप में। इसमें लोगों – जिसमें ट्रेड यूनियन, किसान संघ, राज्य सरकारें, स्थानीय स्वशासन निकाय और अन्य संस्थाएं व संगठन शामिल हैं – को स्पष्ट रूप से आर्थिक बहस में सक्रिय करने की आवश्यकता है।
2. किसी भी औद्योगिक नीति का प्राथमिक उद्देश्य उत्पादक रोज़गार होना चाहिए (जैसा कि सात्यकि रॉय ने एक दशक पहले **कहा** था)। औद्योगिक सफलता का आकलन निर्यात मात्रा या शेयर बाज़ार मूल्यांकन से नहीं, बल्कि कृषि और असंगठित क्षेत्र से श्रमबल को निकाल कर संगठित क्षेत्र में लाने के आधार पर किया जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षा और प्रशिक्षण में निवेश की आवश्यकता होगी, ताकि भारत कौशलहीन श्रम मॉडल में फँसा न रहे।
3. पुनर्वितरण को औद्योगिक विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में देखा जाना चाहिए। घरेलू माँग बढ़ाने के लिए मज़दूरी में वृद्धि, ग्रामीण और शहरी रोज़गार गारंटी और सार्वभौमिक सार्वजनिक प्रावधान (भोजन, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा और परिवहन) आवश्यक हैं।
4. राज्य एक नियामक मात्र नहीं, बल्कि एक उत्पादक होना चाहिए। इसका अर्थ है कि पूंजीगत परिसंपत्तियों, ऊर्जा, मशीनरी, दवाएँ और परिवहन उपकरणों के उत्पादन की सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमता को, सार्वजनिक क्षेत्र के भीतर ही बाज़ार प्रतिस्पर्धा पैदा करके बढ़ाया और विकसित किया जाना चाहिए।
5. आयात निर्भरता, जो किसी भी विकासशील देश के लिए अभिशाप है, को आयात पर शुल्क और मात्रात्मक प्रतिबंधों के चयनात्मक उपयोग से दूर किया जाना चाहिए। कुछ वस्तुओं के लिए स्थानीय सामग्री इस्तेमाल करने की अनिवार्यता होनी चाहिए और सार्वजनिक ख़रीद प्रणाली में घरेलू उत्पादकों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
6. किसी भी विकास परियोजना को बढ़ी हुई तकनीकी और वैज्ञानिक क्षमता के इर्द-गिर्द बनाया जाना चाहिए। वैश्विक मूल्य शृंखलाओं में एकीकरण अपने आप में लक्ष्य नहीं होना चाहिए, बल्कि यह ज्ञान और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के माध्यम से कौशल बढ़ाने और घरेलू शोध एवं विकास का विस्तार करने का साधन होना चाहिए।
7. औद्योगिक नीति के लक्ष्य क्षेत्र-विशिष्ट होने चाहिए। उदाहरण के लिए, वस्त्र और हल्के इंजीनियरिंग जैसे श्रम-गहन क्षेत्र रोज़गार पैदा करने की ओर उन्मुख होने चाहिए, जबकि दवा और इलेक्ट्रॉनिक्स रणनीतिक संप्रभुता की ओर। प्रत्येक क्षेत्र के लिए सार्वजनिक निवेश, राज्य संरक्षण और विनियमन के अनुरूप संयोजनों की आवश्यकता होती है। शहरी भीड़भाड़ और ग्रामीण संकट दोनों से बचने के लिए औद्योगीकरण विकेंद्रीकृत होना चाहिए और शहरी इलाकों तक सीमित नहीं रहना चाहिए।
8. वित्त उत्पादन की सेवा करे, न कि इसका उल्टा। सट्टे को रोकने के लिए पूंजी नियंत्रण आवश्यक हैं, ऋण को रणनीतिक क्षेत्रों (विशेष रूप से लघु और मध्यम उद्यमों) की ओर मोड़ा जाना चाहिए, और सार्वजनिक बैंकों को निजी लाभ के अलावा राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की दिशा में काम करने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए।

यह सूची अपने आप में पूरी नहीं है, बल्कि बहस और चर्चा के लिए एक सुझाव है – केवल भारत में ही नहीं, बल्कि वैश्विक दक्षिण के उन सभी देशों के लिए जो आईएमएफ के विकास मॉडल से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

शीर्षकहीन, गिगी स्कारिया 2020.

यह न्यूज़लेटर लिखते समय, मैंने सोचा कि औद्योगीकरण की यह सारी चर्चा उत्पीड़ित जातियों की महिलाओं के जीवन में क्या मायने रखती होगी, जो अक्सर औद्योगिक नीति का विषय नहीं होतीं। मुझे तमिल कवयित्री सुकीर्तारानी याद आईं, जिन्होंने अडानी समूह का पुरस्कार ठुकराते हुए **कहा** था कि दुनिया के प्रति उनका नज़रिया 'मेरे सिद्धांतों के विरुद्ध है'। एक शक्तिशाली कवयित्री जो पितृसत्ता और जाति व्यवस्था के खिलाफ **लिखती** हैं, की कविता 'नेचर्स फाउंटेनहेड' [कुदरती झरना] पूर्ण मानव मुक्ति की बात करती है, जो हमारी सभी सोच का केंद्र होनी चाहिए :

> फ़र्ज़ करो तुम मुझे ज़िंदा दफ़ना दो।
> मैं हरी घास का मैदान हो जाऊँगी
> और एक उपजाऊ ज़मीन की तरह फैल जाऊँगी।
> तुम मुझे आग लगा सकते हो;
> मैं जलता हुआ पंछी बन जाऊँगी
> और दूर तक ऊँचा, बहुत ऊँचा उड़ूँगी।
> तुम जादू की छड़ी घुमाओगे
> और मुझे जिन्न की तरह चिराग़ में क़ैद कर दोगे;
> मैं पारे की तरह घुलकर
> आसमान की तरफ़ सीधी तन जाऊँगी।
> तुम मुझे हवा में ग़ायब कर सकते हो
> पर मैं पानी में घुलते पानी की तरह
> हर दिशा से बहती चली आऊँगी।
> मैं आऊँगी, श्वास की तरह।
> तुम मुझे तस्वीर की तरह
> किसी दीवार पर टाँग सकते हो;
> मैं रंगों की तरह पिघलकर
> किसी तूफ़ानी नदी में बदल जाऊँगी।
> मैं ही बन जाऊँगी
> धरती
> अग्नि
> आकाश
> वायु
> जल।
> तुम मुझे जितना क़ैद करना चाहोगे, मैं उतना आज़ाद होती जाऊँगी, मैं एक
> कुदरती झरना।

स्नेह सहित,

विजय